गाथा ५७। सत्यव्रत के स्वरूप का कथन। अहिंसाव्रत की व्याख्या हो गयी।

रागेण व दोसेण व मोहेण व मोसभासपरिणामं।
जो पजहदि साहु सया बिदियवदं होइ तस्सेव।।५७।।

जो राग, द्वेष रु मोह से परिणाम हो मृष—भाष का।
छोड़े उसे जो साधु, होता है उसे व्रत दूसरा॥ ५७॥

अभी मुनि की व्याख्या है न? **यह, सत्यव्रत के स्वरूप का कथन है।** आहाहा! आत्मा के अन्तर चैतन्य के शुद्ध आनन्द के आदरसहित जो स्वरूप में स्थिरता हुई है, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र कहते हैं। उस चारित्रदशा में पूर्ण चारित्र न हो, इसलिए ऐसे पंच महाव्रत के शुभोपयोगरूप भाव उसे होते हैं। शुभराग, शुभपरिणाम को यहाँ व्रत कहते हैं।

यहाँ (ऐसा कहा है कि) सत्य का प्रतिपक्ष; अर्थात्, सत्य से विरुद्ध परिणाम, वह मृषा... सत्य से उल्टा, वह झूठ। वह **(असत्य बोलने के परिणाम) राग से,...** (होते हैं) अथवा कोई अनुकूल प्राप्त करने की चीज़ (के) राग के कारण झूठ बोले, कोई प्रतिकूलता का निषेध करने, अभाव होने के लिए द्वेष से झूठ बोले। कोई मोह से झूठ बोले। यह **राग से, द्वेष से अथवा मोह से...** असत्य बोलने के परिणाम होते हैं।

जो साधु—आसन्नभव्य जीव,... आसन्न (अर्थात्) जिसकी मुक्ति अब नजदीक है। आहाहा! संसार के किनारे आ गया है। आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र की दशा तो है, परन्तु उसकी पूर्ण निर्विकल्पता हुई नहीं। सातवीं भूमिका की। इस अपेक्षा से। उसे ऐसे पंच महाव्रत के भाव होते हैं। वह **आसन्नभव्य जीव, उन परिणामों का परित्याग करता है;...** राग, द्वेष और मोह से बोले जाते भाव, होनेवाले भाव को परित्यजता है। **समस्त प्रकार से छोड़ता है,...** मुनि झूठ छोड़ते हैं। परित्यजता है न? **समस्त प्रकार से छोड़ता है, उसे दूसरा व्रत होता है।** यह आत्मा के सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्र की दशासहित की बात है। ऐसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान न हो और सत्यव्रत हो, ऐसा नहीं हो सकता। ऐसी व्रत की भूमिका छठवें गुणस्थान में उस प्रकार के भाव होते हैं, उन्हें

व्यवहारव्रत कहा जाता है। निश्चयव्रत तो स्वरूप में लिपट जाना; स्वरूप आनन्द है, उसमें लीन होना, उसे निश्चय—सच्चा व्रत कहते हैं। यह व्यवहारव्रत उसे विकल्प होते हैं। पुण्य बन्ध का कारण है और स्वभाव के आश्रय से चैतन्य भगवान अपने अतीन्द्रिय आनन्द के आश्रय से जो दृष्टि, ज्ञान और लीनता हुई, वह साक्षात् मुक्ति का कारण है।

श्लोक-७७

अब, ५७ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं :-

(शालिनी)

वक्ति व्यक्तं सत्य-मुच्चैर्जनो यः,
स्वर्गस्त्रीणां भूरिभोगैकभाक् स्यात्।
अस्मिन् पूज्यः सर्वदा सर्वसद्भिः,
सत्यासत्यं चान्यदस्ति व्रतं किम् ।।७७।।

(हरिगीतिका)

स्पष्टता से जो पुरुष, नित सत्य वाणी बोलता।
स्वर्ग की बहु देवियों को, एक वह ही भोगता॥
इस लोक में भी सर्वदा वह, सज्जनों से पूज्य हो।
सत्य से बढ़कर कहो सच, कौन जग में व्रत अहो॥७७॥

[श्लोकार्थः—] जो पुरुष, अति स्पष्टरूप से सत्य बोलता है, वह स्वर्ग की स्त्रियों के अनेक भोगों का एक भागी होता है (अर्थात, वह परलोक में अनन्यरूप से देवाङ्गनाओं के बहुत से भोग प्राप्त करता है) और इस लोक में सर्वदा सर्व सत्पुरुषों का पूज्य बनता है। वास्तव में क्या सत्य से अन्य कोई (बढ़कर) व्रत है ?

श्लोक-७७ पर प्रवचन

अब, ५७ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं :—

वक्ति व्यक्तं सत्य-मुच्चैर्जनो यः,
स्वर्गस्त्रीणां भूरिभोगैकभाक् स्यात्।
अस्मिन् पूज्यः सर्वदा सर्वसद्भिः,
सत्यासत्यं चान्यदस्ति व्रतं किम् ।।७७।।

जो पुरुष, अति स्पष्टरूप से सत्य बोलता है,... अति स्पष्टरूप से अर्थात् किसी को प्रसन्न रखने के लिए कुछ फेरफार नहीं करता। जैसा वस्तु का स्वरूप है, वैसा **अति स्पष्टरूप से सत्य बोलता है, वह स्वर्ग की स्त्रियों के अनेक भोगों का एक भागी होता है...** ऐसा बतलाया कि सत्य बोलने का भाव पुण्य शुभभाव है। समझ में आया ? सत्यव्रत वह दूसरा व्रत, उसका भाव शुभ है; इसलिए उसे पुण्यबन्ध होकर स्वर्ग की स्त्री आदि की अनुकूलता बाहर की मिलती है। ऐसा स्पष्ट कहा। कोई कहे, भाई ! इस व्रत के कारण संवर-निर्जरा होती है, आंशिक होती है, लो। यहाँ तो इनकार करते हैं। देखो न, यह स्पष्ट बात करते हैं।

मुमुक्षु : पाप नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाप नहीं हुआ। मिथ्यात्व का पाप साथ में इकट्ठा पड़ा है न ? वह मिथ्यात्व का भले रहा। मूल पाप। राग का स्वामी होना, देह की क्रिया मैं करता हूँ, व्रत के परिणाम, वह मेरी चीज़ है—ऐसी मान्यता है, वह तो महा मिथ्यात्व है। सात व्यसन से बड़ा पाप है। उस पाप की भूमिका में व्रत-व्रत हो नहीं सकते। बालव्रत और मूर्खता भरपूर तप होता है। जहाँ आत्मा ज्ञातादृष्टा और सहजानन्द की मूर्ति प्रभु है, ऐसा जहाँ अन्तर में स्वरूप की जागृति हुई नहीं और अकेले अन्ध राग के भाव, पंच महाव्रत के भाव करता है, वह सब संसार खाते है, भटकने के खाते है—ऐसा कहते हैं। यहाँ तो समकिती के शुभभाव भी स्वर्ग की स्त्री आदि की प्राप्ति करे, ऐसा तो यहाँ वर्णन किया है। समकिती का व्रत उसे कहीं संवर दे, निर्जरा दे, (ऐसा नहीं है)। कहो, इसमें स्पष्ट कहा है या नहीं ?

जो पुरुष, अति स्पष्टरूप से सत्य बोलता है,... बोलने की क्रिया तो जड़ है। उसके भाव की बात है। बोलने के काल में उसका जो सत्य बोलने का शुभभाव है, **वह स्वर्ग की स्त्रियों के अनेक भोगों का एक भागी होता है...** उस पुण्य के फल में संयोग मिलेंगे, ऐसा कहते हैं। भले संयोग को परन्तु... ऐसा। वह सत्य बोलने का शुभभाव संयोगी भाव है। स्वाभाविक भाव नहीं, इसलिए उस भाव से संयोग मिलेगा। उसमें आत्मा को उससे कुछ लाभ नहीं है। आहाहा! गजब बात! समझ में आया? लो, ऐसी यह व्रत की व्याख्या है। श्वेताम्बर में पाँच महाव्रत निर्जरा के स्थान कहे हैं, ठाणांग में। पंच महाव्रत निर्जरा के स्थान हैं, लो! अब बेचारे करें क्या? यहाँ कहते हैं कि ये पंच महाव्रत के परिणाम संयोगी भाव विकारी है, इसलिए संयोग आएगा। आत्मा की शान्ति और आत्मा के आनन्द को मदद करे, वह यह चीज़ नहीं है, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? भोगों का एक भागी होता है, ऐसा। स्वतन्त्र पुण्य किया है न? आत्मदर्शन ज्ञान-चारित्र की भूमिका में ऐसा शुभभाव है, इसलिए उसे बाहर की स्वर्ग आदि की स्त्रियों की अनुकूलता प्राप्त होगी, ऐसा कहते हैं।

(अर्थात, वह परलोक में अनन्यरूप से देवाङ्गनाओं के बहुत से भोग प्राप्त करता है) और इस लोक में सर्वदा सर्व सत्पुरुषों का... लो। **'सर्वदा सर्वसद्धि'** धर्मात्मा पुरुषों को **पूज्य बनता है। वास्तव में क्या सत्य से अन्य कोई (बढ़कर) व्रत है?** अहिंसा में परम ब्रह्म कहा था यह वीतराग। वह तो व्रत की विकल्प की बात है। **वास्तव में क्या सत्य से अन्य कोई (बढ़कर) व्रत है?** आहाहा!

मुमुक्षु : पुण्यबन्ध

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य है शुभभाव (है), परन्तु समकित की भूमिका में चारित्रवन्त को ऐसा भाव होता है परन्तु उससे पुण्य बँधता है और बाहर की सामग्री मिलेगी। बस, इतना है।

गाथा-५८

गामे वा णयरे वाऽरण्णे वा पेच्छिऊण परमत्थं।
जो मुयदि गहणभावं तिदियवदं होदि तस्सेव।।५८।।

ग्रामे वा नगरे वाऽरण्ये वा प्रेक्षयित्वा परमर्थम्।
यो मुञ्चति ग्रहणभावं तृतीयव्रतं भवति तस्यैव।।५८।।

तृतीयव्रतस्वरूपाख्यानमेतत्। वृत्यावृत्तो ग्रामः तस्मिन् वा चतुर्भिर्गोपुरैर्भासुरं नगरं तस्मिन् वा मनुष्यसञ्चारशून्यं वनस्पतिजातवल्लीगुल्मप्रभृतिभिः परिपूर्णमरण्यं तस्मिन् वा परेण विसृष्टं निहितं पतितं वा विस्मृतं वा परद्रव्यं दृष्ट्वा स्वीकारपरिणामं यः परित्यजति, तस्य हि तृतीयव्रतं भवति इति।

कानन, नगर या ग्राम में जो देख पर वस्तु उसे।
छोड़े ग्रहण के भाव, होता तीसरा व्रत है उसे॥ ५८ ॥

अन्वयार्थ :—[ग्रामे वा] ग्राम में, [नगरे वा] नगर में [अरण्ये वा] या वन में [परम अर्थम्] परायी वस्तु को [प्रेक्षयित्वा] देखकर, [यः] जो (साधु) [ग्रहणभावं] उसे ग्रहण करने के भाव को [मुंचति] छोड़ता है, [तस्य एव] उसी को [तृतीयव्रतं] तीसरा व्रत, अर्थात् अचौर्यमहाव्रत [भवति] है।

टीका :—यह तीसरे व्रत के स्वरूप का कथन है।

जिसके चौतरफ बाड़ हो, वह ग्राम (गाँव) है; जो चार द्वारों से सुशोभित हो, वह नगर है; जो मनुष्य के सञ्चाररहित, वनस्पतिसमूह, बेलों और वृक्षों के झुण्ड आदि से खचाखच भरा हो, वह अरण्य है। ऐसे ग्राम, नगर या अरण्य में अन्य से छोड़ी हुई, रखी हुई, गिरी हुई अथवा भूली हुई परवस्तु को देखकर उसके स्वीकार परिणाम का (अर्थात्, उसे अपनी बनाने–ग्रहण करने के परिणाम का) जो परित्याग करता है, उसे वास्तव में तीसरा व्रत होता है।

गाथा-५८ पर प्रवचन

तीसरे व्रत का स्वरूप। ५८ गाथा।

गामे वा णयरे वाऽरण्णे वा पेच्छिऊण परमत्थं।
जो मुयदि गहणभावं तिदियवदं होदि तस्सेव।।५८।।

कानन, नगर या ग्राम में जो देख पर वस्तु उसे।
छोड़े ग्रहण के भाव, होता तीसरा व्रत है उसे॥ ५८॥

तीसरा व्रत। **यह तीसरे व्रत के स्वरूप का कथन है।** गाँव की व्याख्या। गाँव किसे कहना? **जिसके चौतरफ बाड़ हो, वह ग्राम (गाँव) है;...** यह बाड़ होती है न? थोर की। पहले तो बहुत बाड़ थी। गाँव के चारों ओर बाड़। वहाँ गाँव में गढ़-बढ़ कहाँ थे? बाड़ के ही बड़े गढ़ थोर की बड़ी-बड़ी बाड़। दो-दो माथोड़ा (मनुष्याकार) लम्बी हाथिया थोर की बाड़ और लम्बे थोर, वह गाँव। यह तो पाठ में गाँव है न, उसकी व्याख्या की है।

जो चार द्वारों से सुशोभित हो, वह नगर है; जो मनुष्य के सञ्चाररहित,... जिसमें मनुष्यों का संचार न हो, आवागमन न हो। जिसमें **वनस्पतिसमूह,...** होवे। **बेलों और वृक्षों के झुण्ड आदि से खचाखच भरा हो, वह अरण्य है।** तीन की व्याख्या हुई। पाठ में तीन है न? गाँव, नगर, रण। रण है, उसे यहाँ अरण्य कहा। **ऐसे ग्राम, नगर या अरण्य में अन्य से छोड़ी हुई,...** किसी ने कोई भी वस्तु छोड़ दी हो। गाँव में, नगर में, रण में, ऐसे तीनों में छोड़ दी हो। गाँव में कोई छोड़कर चला गया हो। लो!

रखी हुई,... हो। गाँव में कहीं चीज़ रखी हो और नगर में या वन में कोई चीज़ रखी हो। **भूली हुई...** किसी की चीज़ हो। यह गहना पड़ा है, कोई मनुष्य भूल गया है। **परवस्तु को देखकर उसके स्वीकार परिणाम का...** जो मुनि अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सहित है, उसे ऐसे तीसरे व्रत का शुभराग, शुभ उपयोग होता है। उसे कोई पर की चीज़ हो, उसे **उसके स्वीकार परिणाम का जो परित्याग करता है,...** लो, मुख्य यह। '**परित्यजति**' संस्कृत में है। उसमें भी '**परित्यजति**' था न? '**परित्यजति**' ऐसा आया। परिणाम '**परित्यजति**' संस्कृत में, हों! छोड़ता है। **प्रजहाति** है न, मूल तो? ५७ गाथा में। **प्रजहाति**

मूल पाठ में है। उसका अर्थ संस्कृतकार ने '**परित्यजति**' किया है। **प्रजहाति** झूठ बोलने का त्याग है, जिसे सत्य बोलना है, ऐसा। वह असत्य को सर्वथा प्रकार से छोड़ता है। सत्य बोलने का भाव है, वह महाव्रत शुभभाव है परन्तु उसे होता है। इतना यहाँ सिद्ध करते हैं।

यहाँ तीसरे व्रत में वह कोई भी चीज़ गाँव में, नगर में या वन में किसी की रखी हुई, किसी से छूटी हुई, किसी से भूली हुई, ऐसी चीज़ को लेने के परिणाम छोड़ दे। ऐसी चीज़ है, लाओ ले लूँ। किसी को धर्मादा में दूँगा, ऐसे परिणाम मुनि के नहीं होते, ऐसा कहते हैं। पूरी दुनिया पड़ी है। कहो, कलश निकला हुआ कोई दिखायी दे, सोने की मोहरों का, लो। जंगल में पड़ा हो, भूल गया हुआ पड़ा हो। ऐसे दिखायी दे। लाओ न, ले लूँ। गृहस्थों को दूँगा। वे धर्म में खर्च करेंगे। मन्दिर-बन्दिर बनायेंगे। धर्म में खर्च करना है न! परन्तु पहले लेने के परिणाम ही तेरे खोटे हैं वे? उनका क्या हुआ? परन्तु उस स्वीकार परिणाम को छोड़ दे। चाहे तो हीरा और माणिक दिखायी दे ऐसे। आहाहा! साधु किसे कहे? अन्तर में आनन्द की लहर में झूलते होते हैं, उन्हें ऐसा अशुभ टालने का विकल्प होता है। **उसे वास्तव में तीसरा व्रत होता है।**

श्लोक-७८

अब, ५८ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं—

(आर्या)

आकर्षति रत्नानां सञ्चयमुच्चैरचौर्य्यमेतदिह।
स्वर्गस्त्रीसुखमूलं क्रमेण मुक्त्यङ्गनायाश्च।।७८।।

उग्र अचौर्य जगत में रत्नों का समूह आकृष्ट करे।
परभव में सुर-कामिनी कारण क्रमशः लक्ष्मी-मुक्ति वरे॥

[श्लोकार्थ :—] यह उग्र अचौर्य इस लोक में रत्नों के सञ्चय को आकर्षित करता है और (परलोक में) स्वर्ग की स्त्रियों के सुख का कारण है तथा क्रमानुसार मुक्तिरूपी स्त्री के सुख का कारण है।

श्लोक-७८ पर प्रवचन

अब, ५८ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं— उसमें सत्य में स्त्री आदि देवांगनाओं के योग की बात की थी। परलोक में। इसलोक में सत्पुरुषों से पूजनीय।

आकर्षति रत्नानां सञ्चयमुच्चैरचौर्य्यमेतदिह।
स्वर्गस्त्रीसुखमूलं क्रमेण मुक्त्यङ्गनायाश्च ।।७८।।

श्लोकार्थ : यह उग्र अचौर्य इस लोक में... अचौर्य शुभ परिणाम **इस लोक में रत्नों के सञ्चय को आकर्षित करता है...** पहला तो इस लोक में लिया। **और (परलोक में) स्वर्ग की स्त्रियों के सुख का कारण है...** देखा? यह संयोग है, ऐसा कहते हैं। तीसरे महाव्रत के परिणाम संयोगी भाव है, इसलिए संयोग देता है। उसमें कुछ धर्म दे और आत्मा में एकाग्र हो, ऐसा नहीं है। इतना तो स्पष्ट किया है।

मुमुक्षु : लिखा है न....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पश्चात् क्रम से। वह **स्वर्ग की स्त्रियों के सुख का कारण है तथा क्रमानुसार...** वह राग फिर छोड़ देगा, क्योंकि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में राग हेय है, वह तो है। परन्तु अभी है, पश्चात् उपादेय आत्मा में एकाग्र होकर छोड़ देगा। इसलिए **क्रमानुसार मुक्तिरूपी स्त्री के सुख का कारण है।** यह तो समकिती को... व्रत कारण अर्थात् व्यवहार कहा। यहाँ व्यवहार कहा। सम्यग्दृष्टि को। यहाँ अज्ञानी की बात ही नहीं है।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन मोक्ष का कारण कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार कहते हैं न? मोक्ष (मार्ग) दो कहे न। व्यवहार से कथन है। मोक्षमार्ग दो कथन में आते हैं या नहीं? ऐसे यह कथन है, निरूपण है।

क्रमानुसार मुक्तिरूपी स्त्री के सुख का कारण है। राग का अभाव हुआ है, दृष्टि, ज्ञान और शान्ति तो है। अब वह राग है, उसे छोड़ेगा। छूटेगा ही। उसे छूट जाएगा। क्रमानुसार (छूट जाएगा), इसलिए उसे छोड़कर मुक्ति को प्राप्त हो करेगा। परन्तु यहाँ तो पहले वह शुभभाव है, इसलिए संयोग देता है, इतनी बात की है। दूसरे व्रत में ऐसा कहा।

पहले व्रत में जरा वीतरागी अहिंसा डाली थी। विकल्प है, उसे गौण कर दिया। अहिंसा आत्मा। अकेला वीतरागी स्वभाव ऐसा जिसने प्रगट किया है, वह अहिंसा है। वह तो मुक्ति का कारण है। सत्यव्रत वह स्वर्ग का कारण ऐसा कहा। अचौर्यव्रत स्वर्ग का कारण और क्रम से मुक्ति का कारण है। इस प्रकार से लिया है। समझ में आया? इस कलश में लिया, परन्तु वह समकिती का हो या मिथ्यात्वी का हो, शुभभाव है, वह बन्ध का ही कारण है।

मुमुक्षु : इसमें भी बन्ध आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, यह भी बन्ध है। इसे राग का भावबन्ध ही है परन्तु दृष्टि में हेय है, चारित्र में कमजोरी से आ रहा है। वह कमजोरी उग्र पुरुषार्थ से छोड़ देगा। क्योंकि राग को छोड़ने के मार्ग में पड़ा है। स्वभाव की एकाग्रता की पूर्णता करने के मार्ग में पड़ा है। आहाहा! ऐसे समकिती जीव को ऐसा महाव्रत का भाव मुनि को होता है, वह स्वर्ग के संयोग देता है। पश्चात् क्रम से वह राग छोड़ेगा, तब उसे मुक्ति देगा। राग छोड़ेगा, पश्चात्, हों! इसलिए यह टीका जरा रतनचन्दजी जैसों को पसन्द नहीं आती न! यह स्पष्ट कर डालते हैं। व्रत के परिणाम में यह मिलता है, यहाँ तो ऐसा स्पष्ट कहते हैं।

गाथा-५९

दट्ठूण इत्थिरूवं वांछाभावं णियत्तदे तासु।
मेहुणसण्णविवज्जियपरिणामो अहव तुरीयवदं।।५९।।

दृष्ट्वा स्त्रीरूपं वाञ्छाभावं निवर्तते तासु।
मैथुनसञ्ज्ञाविवर्जितपरिणामोऽथवा तुरीयव्रतम्।।५९।।

चतुर्थव्रतस्वरूपकथनमिदम्। कमनीयकामिनीनां तन्मनोहराङ्गनिरीक्षणद्वारेण समुपजनितकौतूहलचित्तवाञ्छापरित्यागेन, अथवा पुम्वेदोदयाभिधाननोकषायतीव्रोदयेन सञ्जातमैथुनसञ्ज्ञापरित्यागलक्षणशुभपरिणामेन च ब्रह्मचर्यव्रतं भवति इति।

जो देख रमणी रूप, वांछाभाव उसमें छोड़ता।
परिणाम मैथुन-संज्ञ-वर्जित, व्रत चतुर्थ यही कहा॥ ५९॥

अन्वयार्थ :—[स्त्रीरूपं दृष्ट्वा] स्त्रियों के रूप देखकर, [तासु] उनके प्रति [वांच्छाभावं निवर्तते] वांछाभाव की निवृत्ति वह, [अथवा] अथवा [मैथुनसंज्ञाविवर्ज्जितपरिणामः] मैथुनसंज्ञारहित जो परिणाम, वह [तुरीयव्रतम्] चौथा व्रत, अर्थात् ब्रह्मचर्यमहाव्रत है।

टीका :—यह, चौथे व्रत के स्वरूप का कथन है।

सुन्दर कामिनियों के मनोहर अङ्ग के निरीक्षण द्वारा उत्पन्न होनेवाली कुतूहलता के चित्तवांछा के परित्याग से अथवा पुरुषवेदोदय नाम का जो नोकषाय का तीव्र उदय, उसके कारण उत्पन्न होनेवाली मैथुनसंज्ञा के परित्यागस्वरूप शुभपरिणाम से ब्रह्मचर्यव्रत होता है।

गाथा-५९ पर प्रवचन

गाथा ५९। चौथे व्रत की व्याख्या।

दट्ठूण इत्थिरूवं वांछाभावं णियत्तदे तासु।
मेहुणसण्णविवज्जियपरिणामो अहव तुरीयवदं।।५९।।

जो देख रमणी रूप, वांछाभाव उसमें छोड़ता।
परिणाम मैथुन-संज्ञ-वर्जित, व्रत चतुर्थ यही कहा॥ ५९॥

टीका : यह, चौथे व्रत के स्वरूप का कथन है। सुन्दर कामिनियों के मनोहर अङ्ग के निरीक्षण द्वारा... शरीर की कान्ति आदि, कोमलता आदि, सुकोमलता आदि **सुन्दर कामिनियों के मनोहर अङ्ग...** आहाहा! यह शरीर मिट्टी का पुतला, माँस का पुतला है। माँस और हड्डियों की सुन्दरता। **निरीक्षण द्वारा उत्पन्न होनेवाली कुतूहलता के चित्तवांछा के...** भाषा देखी? आहाहा! ऐसा हो, वाह! कौतुहलता हो। **कुतूहलता के चित्तवांछा के परित्याग से...** यहाँ यह शब्द आया। उसमें भी परित्याग था, यहाँ भी परित्याग है। '**विवर्जित**' है न? '**विवर्जित**' विशेष वर्जित। पाठ में।

महाव्रतधारी, आत्मज्ञानी सन्त को ऐसा भाव स्त्री को देखकर कौतूहल के परिणाम नहीं होते, ऐसा कहते हैं। कोई बाह्य चीज़ विस्मयकारी है ही नहीं। आहाहा! विस्मयकारी तो चैतन्य आनन्दमूर्ति है। उसका जिसे दृष्टि में आनन्द तैरता है। धर्मात्मा को तो दृष्टि में आनन्द का स्वभाव तैरता है। उसमें इन स्त्रियों के मनोहर शरीर के अंगों को देखकर **कुतूहलता के चित्तवांछा के परित्याग से...** लो। **अथवा पुरुषवेदोदय नाम का जो नोकषाय का तीव्र उदय, उसके कारण उत्पन्न होनेवाली मैथुनसंज्ञा के परित्यागस्वरूप...** देखो! यहाँ आया, दोनों में परित्याग। **शुभपरिणाम से...** लो, यह शुभपरिणाम है। **ब्रह्मचर्यव्रत होता है।** यह ब्रह्मचर्य का शुभभाव होता है। पाठ है।

समकिती और चारित्रवन्त आत्मा के आनन्द की रमणतावाला मुनि है, उसे ऐसा चौथा ब्रह्मचर्यव्रत शुभपरिणाम है, पुण्य है, आस्रव है। ऐसा किसलिए लिखना चाहिए? यह तो कहा है, हस्तावलम्ब देखकर निमित्तरूप से उपदेश (किया है)। वह सब निमित्त है। आया है परन्तु उसका फल संसार है। एक तो देखने के कौतुहल के परिणाम का त्याग

और तीव्र कर्म के निमित्त के उदय में जो विषय के परिणाम होते हैं, उनका त्याग। ऐसा। ऐसे **शुभपरिणाम से ब्रह्मचर्यव्रत होता है।** आहाहा! चारित्रवन्त को। अज्ञानी को वह नहीं होता। यह स्पष्टीकरण करेंगे।

श्लोक-७९

अब, ५९ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं —

(मालिनी)

भवति तनु-विभूतिः कामिनीनां विभूतिं,
स्मरसि मनसि कामिन्स्त्वं तदा मद्वचः किम्।
सहज-परम-तत्त्वं स्व-स्वरूपं विहाय,
व्रजसि विपुल-मोहं हेतुना केन चित्रम्।।७९।।

(वीरछन्द)

कामिनियों की तन-विभूति का कामी पुरुष यदि मन से।
करे स्मरण तो होगा क्या लाभ तुझे मम वचनों से॥
सहजस्वरूपी परम तत्त्व को क्यों त्यागे आश्चर्य अहो।
विपुल मोह को प्राप्त हुए हो किस कारण से तुम्हीं कहो॥

[श्लोकार्थः—] कामिनियों की जो शरीरविभूति, उस विभूति का, हे कामी पुरुष! यदि तू मन में स्मरण करता है तो मेरे वचन से तुझे क्या लाभ होगा? अहो! आश्चर्य होता है कि सहज परमतत्त्व को, निजस्वरूप को छोड़कर तू किस कारण विपुल मोह को प्राप्त हो रहा है!

श्लोक-७९ पर प्रवचन

अब, ५९ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं—

भवति तनु-विभूतिः कामिनीनां विभूतिं,
स्मरसि मनसि कामिन्स्त्वं तदा मद्वचः किम्।
सहज-परम-तत्त्वं स्व-स्वरूपं विहाय,
व्रजसि विपुल-मोहं हेतुना केन चित्रम्।।७९।।

श्लोकार्थ :.. अरे! **कामिनियों की जो शरीरविभूति,...** लो, यह शरीर विभूति। धूल की राख। यह विभूति नहीं कहते, भूति? भस्म। इस शरीर के भस्म की विभूति। आहाहा। बड़ी आँखें हों, काले डेला हों, कान कुण्डल जैसे हों, मुख चन्द्रमा जैसा हो, नाक गरुड़ जैसी हो, होंठ लाल हो, गला लम्बा हो और हाथ-पैर... यह सब मिट्टी के पुतले के आकार हैं।

मुमुक्षु : सब मापसर हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मापसर है, इसलिए सुन्दर कहते हैं न। इस कामिनी शरीर की विभूति मिट्टी-जड़ की विभूति है। आहाहा!

कामिनियों की जो शरीरविभूति, उस विभूति का, हे कामी पुरुष! यदि तू मन में स्मरण करता है... मन में, हों! वाह! क्या है? आहाहा! एक क्षण में कुछ रोग हो... ऐसा मुर्दा... उसे देखते ग्लानि आवे। आहा! ऐसे शरीर को देखकर **हे कामी पुरुष! यदि तू मन में स्मरण करता है...** शरीर की सुन्दरता को मन में स्मरण करेगा। ख्याल में आकर ऐसा कहते हैं.. आहाहा! **तो मेरे वचन से तुझे क्या लाभ होगा?** मुनि कहते हैं। हम तो आत्मा के ब्रह्मचर्य के... आत्मा के ब्रह्म आनन्द की चर्या की रमणता में ऐसा व्यवहार का शुभभाव का ब्रह्मचर्य भाव हो, उसे अशुभभाव नहीं होता। ऐसा जो तुझे उपदेश किया। यदि तू ऐसा निरीक्षण करके ऐसे भाव करेगा तो मेरे वचन से तुझे कुछ लाभ नहीं होगा। सुनकर उसने बुरे भाव छोड़े नहीं तो तूने मेरा सुना नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अहो! आश्चर्य होता है कि सहज परमतत्त्व को,... लो, पाठ है न? **सहज-परम-तत्त्वं स्व-स्वरूपं** स्व-स्वरूपं। अरे! सहज भगवान आनन्द परमतत्त्व, अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड, प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द की चूसनी आत्मा। आहाहा! वह तो अनादि से स्वाभाविक तत्त्व है। सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा। आहाहा! सत् शाश्वत् स्वाभाविक ज्ञान और आनन्द, ऐसा जो परमतत्त्व। स्वस्वरूप की व्याख्या की है। स्व अर्थात् निजस्वरूप,

ऐसा। पाठ में यह है। **स्व-स्वरूपं... सहज-परम-तत्त्वं स्व-स्वरूपं... सहज परमतत्त्व।** परमभाव ऐसा स्वस्वरूप आनन्दमूर्ति प्रभु, आकुलतारहित चीज़, निराकुल स्व-निजस्वरूप, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द लबालब भरा है। अरे! ऐसे आनन्दतत्त्व को भूलकर, अपने निजानन्द तत्त्व को भूलकर **छोड़कर तू किस कारण विपुल मोह को प्राप्त हो रहा है!** आहाहा! क्या है तुझे यह?

भगवान परमतत्त्व निजस्वरूप आनन्द, उस अतीन्द्रिय आनन्द के एक सेकेण्ड के स्वाद के समक्ष इन्द्र का इन्द्रासन जहाँ सड़ा हुआ तिनका दिखायी दे, बिल्ली सड़ी हो, कुत्ता सड़ गया हो, ऐसे समकिती को भोग आत्मा के आनन्द के समक्ष... आहाहा! ऐसे दिखायी देते हैं। उसे तू आनन्द के भाव को छोड़कर ऐसे विपुल मोह को क्यों प्राप्त हो रहा है? आहाहा! चैतन्यस्वरूप आनन्द है, वहाँ क्यों आकर्षित नहीं होता? ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है, वहाँ क्यों आकर्षित नहीं होता? और यहाँ कहाँ आकर्षित होने लगा? ऐसा कहते हैं।

परम सहज तत्त्व निजस्वरूप का आकर्षण होना चाहिए। उसमें एकाकार, विस्मयता उसमें होनी चाहिए कि अहो! ऐसा तत्त्व! ऐसा तत्त्व वह मैं स्वयं हूँ। ऐसे तत्त्व के परमानन्द को भूलकर, छोड़कर... लो! **विहाय** है न? **सहज-परम-तत्त्वं स्व-स्वरूपं विहाय,** अरे! भगवान आनन्दमूर्ति भरा बर्तन अन्दर आनन्द के पकवान पड़े हैं। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के पकवान को छोड़कर, ऐसे विष्टा जैसे भोग को तू चाहता है। किस कारण से तुझे ऐसा होता है? ऐसा कहते हैं। विपुल मोह को प्राप्त होता है! तुझे पर में सावधानी क्यों हो जाती है?

भगवान आत्मा स्वयं अतीन्द्रिय आनन्द का भरा बर्तन है। यह तो सब जूठन है। आहाहा! स्वप्न समान। आता है न? 'सर्व जगत है जूठन सम अथवा स्वप्न समान, यह कहिये ज्ञानी दशा बाकी वाचा ज्ञान।' समझ में आया? जिसके ज्ञान में वस्तु है न, परम स्व-स्वरूप, निजस्वरूप? तो उस निजस्वरूप में, स्वस्वरूप में तो अकेला अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय आनन्द पूर्ण-पूर्ण लबालब भरा है। अरे! उस पर लक्ष्य न करके, उसे छोड़कर। **विहाय** ऐसे **विपुल मोह को क्यों प्राप्त हो रहा है!** आहाहा!

अस्ति है, उसकी नास्ति करता है और परम में सुख नहीं है, उसे तू अस्ति सिद्ध

करता है। आहाहा! परमानन्दस्वरूप आत्मा अस्ति है। आनन्द है, ऐसे विद्यमान आनन्द को छोड़कर, ऐसा कहते हैं और पर में कुछ धूल भी नहीं है। इस कामिनी के रूप और मोह में सावधान होता है। तुझे यह क्या है? ऐसा कहते हैं। क्या तुझे भूत लगा है यह? मिथ्यात्व का भूत लगा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अहो! आश्चर्य होता है... यहाँ तो ऐसा कहते हैं। आश्चर्य होता है। अरे! निजानन्द के स्वरूप के घर को भूलकर; जहाँ आनन्द है, उसे छोड़कर; जहाँ कहीं धूल में भी जरा भी आनन्द नहीं है। आहाहा! अरे! ऐसे मोह को, परसन्मुख की सावधानी, ऐसा कहते हैं। स्वसन्मुख की सावधानी को छोड़कर, ऐसा कहते हैं। परसन्मुख की सावधानी किसलिए करता है? प्रभु! क्या है तुझे? आहाहा! **विपुल मोह को प्राप्त हो रहा है!** भ्रमणा को प्राप्त हो रहा है, ऐसा कहते हैं। जहाँ (सुख) नहीं है, वहाँ तुझे सुखबुद्धि उत्पन्न होती है। जहाँ सुख है, उसे तो छोड़ देता है। सुख की अस्ति / सत्तास्वभाव ऐसा भगवान है, उसे तो तू छोड़ देता है। है, उसे छोड़ देता है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। और नहीं है, वहाँ तू मोह को प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं। यह विपुल मोह। उसमें सावधान हुआ। यहाँ सावधानपना छूट जाता है। उपदेश तो ऐसा ही दिया जाता है न? समझ में आया? मुनि को ऐसा होता नहीं।

देखो न! कैसी भाषा प्रयोग की है? **कामिनियों की जो शरीरविभूति,...** उसके अंग-उपांग सब सुन्दर, सुकोमल, कोमल। परन्तु वे तो सब माँस और हड्डियाँ हैं। ऊपर की जरा चमड़ी उखाड़कर देखे तो सब दुर्गन्ध मारे, ऐसा होता है। अरे! हड्डियों के पुतले में कोमलता की विभूति में तुझे यह क्या हुआ? उसे क्यों याद करता है? यहाँ भगवान महाप्रभु है, उसे क्यों याद नहीं करता? अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु है, उसे क्यों याद नहीं करता? और उसमें नहीं है, उसे क्यों याद करता है? ऐसा कहते हैं। गजब कहते हैं यह। समझ में आया?

समकित को पर में सुखबुद्धि होती ही नहीं परन्तु ये चारित्रवन्त हैं। स्थिरता में भी इन्हें अस्थिरता का भाग नहीं है। एक व्रत का शुभभाव है, व्रत का शुभभाव है। यह तो कहा न अन्दर? शुभपरिणाम। अन्दर टीका में कहा है। ब्रह्मचर्यव्रत, वह शुभपरिणाम है। समझ में आया? ऐसी स्पष्ट बात है। लो, मुनि का चौथा व्रत / ब्रह्मचर्यव्रत भी शुभभाव है, राग है, आस्रव है, बन्ध का कारण है, परसन्मुख की दशा है। आहाहा! लो, ५९ गाथा हुई।

गाथा-६०

सव्वेसिं गंथाणं चागो णिरवेक्खभावणापुव्वं।
पंचम-वद-मिदि भणिदं चारित्तभरं वहंतस्स।।६०।।

सर्वेषां ग्रन्थानां त्यागो निरपेक्षभावनापूर्वम्।
पञ्चम-व्रत-मिति भणितं चारित्र-भरं वहत: ।।६०।।

इह हि पञ्चमव्रतस्वरूपमुक्तम्। सकलपरिग्रहपरित्यागलक्षणनिजकारणपरमात्मस्वरूपावस्थितानां परमसंयमिनां परमजिनयोगीश्वराणां सदैव निश्चयव्यवहारात्मकचारु-चारित्रभरं वहतां, बाह्याभ्यन्तरचतुर्विंशतिपरिग्रहपरित्याग एव परम्परया पञ्चमगतिहेतुभूतं पञ्चमव्रतमिति।

तथा चोक्तं समयसारे ह्न

मज्झं परिग्गहो जदि तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज।
णादेव अहं जम्हा तम्हा ण परिग्गहो मज्झ।।

तथाहि ह्न

निरपेक्ष-भाव संयुक्त सब ही ग्रन्थ के परित्याग का।
परिणाम है व्रत पंचवां चारित्रभर वहनार का॥६०॥

अन्वयार्थ :—[निरपेक्षभावनापूर्व्वम्] [१]निरपेक्ष भावनापूर्वक (अर्थात्, जिस भावना में पर की अपेक्षा नहीं है – ऐसी शुद्ध निरालम्बन भावनासहित) [सर्वेषां ग्रन्थानां त्यागः] सर्व परिग्रहों का त्याग (सर्व परिग्रहत्याग सम्बन्धी शुभभाव) उस,

---

१- मुनि को मुनित्वोचित निरपेक्ष शुद्धपरिणति के साथ वर्तता हुआ जो (हठरहित) सर्व परिग्रहत्याग-सम्बन्धी शुभोपयोग, वह व्यवहार अपरिग्रहव्रत कहलाता है। शुद्धपरिणति न हो, वहाँ शुभोपयोग हठसहित होता है; वह शुभोपयोग तो व्यवहारव्रत भी नहीं कहलाता। [इस पाँचवें व्रत की भाँति अन्य व्रतों का भी समझ लेना।]

[चारित्रभरं वहतः] [१]चारित्रभर वहन करनेवाले को पाँचवाँ व्रत, अर्थात् अपरिग्रहमहाव्रत कहा है।

***टीका :*—यहाँ (इस गाथा में) पाँचवें व्रत का स्वरूप कहा जाता है।**

सकल परिग्रह के परित्यागस्वरूप निज कारणपरमात्मा के स्वरूप में अवस्थित (स्थिर हुए) परम संयमियों को–परम जिनयोगीश्वरों को–सदैव निश्चयव्यवहारात्मक सुन्दर चारित्रभर वहन करनेवालों को, बाह्य–अभ्यन्तर चौबीस प्रकार के परिग्रह का परित्याग ही परम्परा [२] से पञ्चम गति के हेतुभूत – ऐसा पाँचवाँ व्रत है।

इसी प्रकार (श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत) श्री समयसार में (२०८ वीं गाथा द्वारा) कहा है कि —

(वीरछन्द)

पर पदार्थ यदि मेरा हो तो अजीवत्व हो प्राप्त मुझे।
मैं तो ज्ञाता रहूँ सदा ही, अतः परिग्रह नहीं मुझे॥

***गाथार्थ :*—यदि परद्रव्य–परिग्रह मेरा हो तो मैं अजीवत्व को प्राप्त होऊँ। मैं तो ज्ञाता ही हूँ; इसलिए (परद्रव्यरूप) परिग्रह मेरा नहीं है।**

गाथा-६० पर प्रवचन

पाँचवें व्रत का स्वरूप। ६०वीं गाथा। इसमें नीचे विस्तार बहुत आयेगा।

सव्वेसिं गंथाणं चागो णिरवेक्खभावणापुव्वं।
पंचम–वद–मिदि भणिदं चारित्तभरं वहंतस्स।।६०।।

१- चारित्रभर = चारित्र का भार; चारित्रसमूह; चारित्र की अतिशयता।

२- शुभोपयोगरूप व्यवहारव्रत, शुद्धोपयोग का हेतु है और शुद्धोपयोग मोक्ष का हेतु है – ऐसा मानकर यहाँ उपचार से व्यवहारव्रत को मोक्ष का परम्परा हेतु कहा है। वास्तव में तो शुभोपयोगी मुनि को मुनियोग्य शुद्धपरिणति ही (शुद्धात्मद्रव्य का अवलम्बन करती है, इसलिए) विशेष शुद्धिरूप शुद्धोपयोग का हेतु होती है और वह शुद्धोपयोग, मोक्ष का हेतु होता है। इस प्रकार इस शुद्ध परिणति में रहे हुए मोक्ष के परम्पराहेतुपने का आरोप–उसके साथ रहनेवाले–शुभोपयोग में करके, व्यवहारव्रत को मोक्ष का परम्परा हेतु कहा जाता है। जहाँ शुद्ध परिणति ही न हो, वहाँ वर्तते हुए शुभोपयोग में मोक्ष के परम्पराहेतुपने का आरोप भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि जहाँ मोक्ष का यथार्थ परम्पराहेतु प्रगट ही नहीं हुआ है – विद्यमान ही नहीं है, वहाँ शुभोपयोग में आरोप किसका किया जाए?

निरपेक्ष–भाव संयुक्त सब ही ग्रन्थ के परित्याग का।
परिणाम है व्रत पंचवां चारित्रभर वहनार का॥६०॥

अन्वयार्थ—निरपेक्ष भावनापूर्वक ; अर्थात्, जिस भावना में पर की अपेक्षा नहीं है – ऐसी शुद्ध निरालम्बन भावनासहित,... परिग्रह है न? अर्थात् पकड़ यहाँ है, कहते हैं। यहाँ पकड़ इस ओर नहीं है, ऐसा निकाला। **निरपेक्ष भावनापूर्वक ; अर्थात्, जिस भावना में पर की अपेक्षा नहीं है – ऐसी शुद्ध निरालम्बन भावनासहित,...** इसके नीचे अब। नीचे नोट। **मुनि को मुनित्वोचित निरपेक्ष शुद्धपरिणति के साथ वर्तता हुआ...** मुनि उसे कहते हैं कि जिसे वीतराग शुद्धपरिणति शुद्धदशा वर्तती है। अकेले शुभव्रत के परिणाम नहीं, ऐसा कहते हैं। मुनि को–धर्मात्मा सच्चे सन्त को उनके योग्य, **निरपेक्ष शुद्धपरिणति....** छठवें गुणस्थान के योग्य निरपेक्ष शुद्धपरिणति अर्थात् कि जिसे राग की अपेक्षा भी नहीं। ये व्रत के परिणाम हैं तो शुद्धपरिणति है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

निरपेक्ष शुद्धपरिणति के साथ वर्तता हुआ... निरपेक्ष, समझ में आया? उसे यह परिग्रह के त्याग का विकल्प जो अपरिग्रह है, ऐसी अपेक्षा भी जिसे–शुद्धपरिणति को नहीं है। वह भाव भिन्न रह गया है। आत्मा अखण्ड आनन्द का जिसे परिग्रह अर्थात् पकड़ अनुभव में हुई है। उसे पर की कोई अपेक्षा नहीं है। लो! ऐसे जीव को, शुद्धपरिणति निरपेक्ष वर्तती है उसे, उसके **साथ वर्तता हुआ जो (हठरहित) सर्व परिग्रहत्याग–सम्बन्धी...** सर्व परिग्रहत्याग। वहाँ तो वस्त्र आदि कुछ है नहीं। आहाहा! बाहर की बात रह गयी है। परिग्रह–वस्त्ररहित। परन्तु वह मूल है वह? मूल बिना बाहर में (चारित्र) कहाँ से आया?

निरपेक्ष भावनापूर्वक... शब्द है न? देखो न, पाठ में ही है न? **निरपेक्ष भावनापूर्वक...** इसका अर्थ हुआ कि पहले महाव्रत में भी निरपेक्ष अहिंसाभाव परिणति वर्तती है। उसे अहिंसा का जो विकल्प है, इसलिए यह वर्तती है – ऐसा नहीं है। क्या कहा? समझ में आया? यहाँ लिखा है न, वह पाँचों में ले लेना। मुनि, सच्चे सन्त को आत्मा में अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द, उसके अवलम्बन से प्रगट हुई निरपेक्ष वीतरागी परिणति / अहिंसा (वर्तती है)। उस अहिंसा को अहिंसाव्रत का विकल्प है, उसकी भी उसे अपेक्षा नहीं है। ऐसी अहिंसा वीतरागी परिणति के साथ में रहा हुआ विकल्प अहिंसा व्यवहार, हठरहित का भाव उसे होता है। कहो, समझ में आया?

इसी प्रकार सत्यव्रत में भी अपना परमसत्य स्वरूप की अपेक्षा होकर जो निर्मल परिणति हुई, उसे सत्यव्रत के विकल्प की अपेक्षा से हुई है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? सत्यव्रत का विकल्प है, इसलिए यहाँ सत्य परिणति निरपेक्ष वर्तती है, ऐसा नहीं है। निरपेक्ष है। उसकी इसे अपेक्षा नहीं है। आहाहा! समझ में आया या नहीं इसमें? इसमें समझ में आता है या नहीं? ऐई! लड़कों! हर्षद! समझ में आता है न? थोड़ा-थोड़ा? ठीक, बहुत अच्छा। हाँ किया न! कहो, समझ में आया? आहाहा! क्यों प्रेमचन्दजी! यह तो समझ में आये ऐसा है। पूरा समझ में आता है? ये तो परिचयवाले हैं न? आहाहा!

क्या कहना है? यहाँ निरपेक्ष में से यह पाँचों में ही निकालना है। **निरपेक्ष भावनापूर्वक...** यह विकल्प नहीं, संकल्प नहीं। निरपेक्ष भावना अर्थात् आत्मा के शुद्ध ध्रुव स्वभाव के आश्रय से होकर जो वीतरागी परिणति अहिंसक हुई है, वह निरपेक्ष भावना है। ऐसी निरपेक्ष भावनापूर्वक व्यवहार अहिंसाव्रत का जो विकल्प है, उसे पुण्यबन्ध का कारण कहकर, उसे संयोगी भाव है, ऐसा कहते हैं। वह निरपेक्ष भावना, वह स्वभाविक भाव है। उसके साथ अहिंसाव्रत के विकल्प की उसे अपेक्षा नहीं है। तथापि ऐसे निरपेक्ष भावना के साथ... लो, यह तो भाई! वह आया, सहचर... सहचर... सहचर... सब मेल है न! देखो न! ओहोहो.. गजब बात है। सन्तों की कथनी चारों ओर से (मेल/सुमेलवाली होती है)।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ये व्यवहार की अपेक्षा से प्रगट हुए हैं, ऐसा नहीं है। भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप.. आहाहा! सचेत वस्तु, सचेत वस्तु, जागृत वस्तु, आनन्द वस्तु। ऐसी चीज़ के अवलम्बन से प्रगट हुई शुद्धपरिणति को अहिंसाव्रत के विकल्प की अपेक्षा नहीं है, तथापि उसके साथ रहा हुआ व्यवहार अहिंसा का विकल्प, उसे पहला महाव्रत का परिणाम कहा जाता है।

इसी प्रकार दूसरा, सत्यस्वरूप भगवान आत्मा, पूर्ण सत्य आनन्द का आश्रय लेकर, जो परमसत्य की शुद्ध वीतराग परिणति हुई, उसे सत्यव्रत के विकल्प के महाव्रत की अपेक्षा नहीं है। ऐसी निरपेक्ष परिणति के साथ सहचररूप से दूसरे महाव्रत के परिणाम होते हैं। समझ में आया? निरपेक्ष चारित्र वर्तता है, उसके साथ में यह सत्यव्रत का शुभभाव है, उसे साथ में-सहचर देखकर व्यवहारचारित्र की उपमा उसे कही जाती है। इसी प्रकार

तीसरे व्रत में-अचौर्य। कहीं बाहर से ग्रहण नहीं करना है। यह तो अन्दर में गृहीत भगवान पूर्णानन्द प्रभु सहजस्वरूप है, उसमें अन्दर जो शुद्ध वीतरागी परिणति (होती है), वह अचौर्य भाव उसका निश्चय है। कहीं से लिया नहीं है। अपने में से आयी हुई दशा है। ऐसी वीतराग परिणति, वह अचौर्यव्रत के राग की अपेक्षा से नहीं है। आहाहा! वह व्यवहार है, तो यह निश्चय है-ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। जैसे अजीव है तो जीव है, ऐसा है?

मुमुक्षु : ऐसा कहाँ से होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : अजीव है तो जीव है, ऐसी दो अपेक्षा से सिद्ध करना हो तो क्या करे? भाई! अजीव है तो जीव है, जीव है तो अजीव है? यह तो अजीवपना और जीवपना भिन्न स्वतन्त्र सिद्ध करना हो तो ऐसा, परन्तु वह अजीव है, इसलिए जीव है और जीव है, इसलिए अजीव है, ऐसा नहीं है। इसी प्रकार व्यवहार है तो निश्चय है, ऐसा है? बिल्कुल नहीं। आहाहा! कहो, कान्तिभाई! आहाहा! दिगम्बर सन्तों का कथन तो अमृत का प्रवाह बहाया है उसमें। आहाहा! किसी का पक्ष नहीं, यह सत्य है। समझ में आया? यह अचौर्य का (कहा)।

इसी प्रकार जिसे अन्तर्ब्रह्मानन्द प्रगट हुआ है। ब्रह्म अर्थात् आत्मा आनन्दस्वरूप का चर्य, अन्दर ब्रह्मानन्द की शान्ति प्रगट हुई, निश्चय ब्रह्मचर्य (प्रगट हुआ), उसे व्यवहार ब्रह्मचर्य के राग की अपेक्षा नहीं है। समझ में आया? ब्रह्मचर्य ब्रह्मस्वरूप भगवान, वह आनन्दमूर्ति प्रभु, उसके आश्रय से हुई जो आनन्द, ब्रह्मचर्य पर्याय में वीतरागी परिणति निश्चय ब्रह्मचर्य प्रगट हुआ है, उसे व्यवहारव्रत के ब्रह्मचर्य के विकल्प की अपेक्षा नहीं है। निरपेक्ष परिणति है। उसके साथ में सहचररूप से साथ में... ऐसा है न? साथ में शब्द पड़ा है या नहीं? उसका अर्थ क्या हुआ? साथ में है, बस! पहले यह और बाद में यह, ऐसा इसमें कहाँ है? समझ में आया? ऐसा ब्रह्म अर्थात् भगवान परम ब्रह्मस्वरूप प्रभु आत्मा के आनन्द की दशा, अतीन्द्रिय ब्रह्मचर्य पर्याय में प्रगट हुआ है, उसे चौथे व्रत के विकल्प के ब्रह्मचर्य की अपेक्षा नहीं है। ऐसे ब्रह्मचर्य के साथ रहा हुआ शुभभाव व्यवहार ब्रह्मचर्य होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : चार को लागू पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चार, और यह पाँचवाँ चलता है। कहो, समझ में आया? गजब

काम किया है। व्यवहार का भाव चलता है, उसमें यह डाला है। देखो! वस्तु की स्थिति इस प्रकार से है, उसे सिद्ध करने की कला इस प्रकार की है। आहाहा! क्या प्रभु तुझमें आनन्द है, उसे प्रगट करने के लिए किसी की अपेक्षा है?

अब कहते हैं कि निश्चय अपरिग्रह व्रत। जिसे रागरहित अरागी वीतरागी परिणति प्रगट हुई है, उसे परिग्रह के त्याग का जो शुभभाव का विकल्प, उसकी अपेक्षा इसे नहीं है। इस प्रकार निरपेक्ष भावनापूर्वक। पूर्वक में यह साथ आ गया है। यहाँ कहा न? निरपेक्ष भावना... अर्थात् पूर्व में कहा हुआ, यह ऐसा कुछ नहीं। यह तो ऐसा पूर्वक साथ में, ऐसी परिणति के साथ में अर्थात् उस व्यवहारपूर्वक निश्चय को नहीं रहा, परन्तु निश्चयपूर्वक अर्थात् निश्चय है, वहाँ आगे साथ में रहा हुआ विकल्प है। आहाहा! गजब बात, भाई! वस्तु की स्थिति को प्रसिद्ध करने की पद्धति। यह तो वस्तु का स्वरूप जानना है।

'सर्वेषां' सर्व परिग्रहों का त्याग;... लो, अर्थात्? अन्वयार्थ चलता है। **जिस भावना में पर की अपेक्षा...** भावना अर्थात् एकाग्रता। शुद्ध चैतन्य भगवान आत्मा में एकाग्रता। लो, यहाँ भावना अर्थात् एकाग्रता। वह भावना अर्थात् कल्पना। सामायिक में आता है न? शुद्ध उपयोग की भावना। प्रवचनसार में। वहाँ ऐसा अर्थ किया है। अरे! भगवान! क्या करते हैं, भाई! आहाहा! उसे यथास्थान में जहाँ है, वहाँ रहने दे न? **ऐसी शुद्ध निरालम्बन भावनासहित, सर्व परिग्रहों का त्याग;...** देखा? चौथे में शुभ परिणाम था न? यहाँ फिर डाला।

सर्व परिग्रहों का त्याग; अर्थात्, सर्व परिग्रहत्याग सम्बन्धी शुभभाव, उस चारित्रभर वहन करनेवाले को... चारित्र का भार; चारित्रसमूह; चारित्र की अतिशयता। वह स्वरूप का चारित्र अन्दर है, उसे ऐसा भाव होता है। **चारित्रभर वहन करनेवाले को पाँचवाँ व्रत,..** कहा है। शुभभाव होता है। आहाहा!

विशेष आयेगा.....　　(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)